केंद्रीय जांच ब्यूरो, बैंक प्रतिभूति और धोखाधड़ी प्रकोष्ठ

बनाम

रमेश गेली और अन्य

(आपराधिक अपील सं.1077-1081/2013)

23 फरवरी, 2016

[प्रफुल्ल सी. पंत और रंजन गोगोई, न्यायाधिपति]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988- धारा 13 (2) सहपठित धारा 13(1)(डी) बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 -46 ए- जी.टी.बी. निजी बैंक के अध्यक्ष, निदेशक और अधिकारी -ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स के साथ विलय से पहले -क्या पीसी अधिनियम के तहत दंडित अपराधों के संबंध में उनके अभियोजन के उद्देश्य लोक सेवक हैं ठहराया: अध्यक्ष/प्रबंध निदेशक जीटीबी के कार्यकारी निदेशक पीसी एक्ट के तहत बैंक लोक सेवक हैं बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46 ए में- संशोधित धारा 464 के अनुसार, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा ज़ारी लाइसेंस के तहत संचालित बैंकिंग कंपनी के प्रबंध निदेशक और कार्यकारी निदेशक, जो पहले से ही लोक सेवक हैं, उन्हें 'लोक सेवक' की परिभाषा से बाहर नहीं किया जा सकता है--केवल इसलिए कि पी.सी. अधिनियम ने एसएस 161 और

165ए आई.पी.सी. को निरस्त कर दिया था, यह नहीं कहा जा सकता है कि विधायिका का इरादा धारा 46ए को पी.सी. अधिनियम के प्रयोजन से अप्रयोज्य बनाने का था -कानून के प्रयोजनों के लिए अनुपयुक्त है जिसे अधिकारातीत नहीं दिखाया गया है, उसे उचित अर्थ दिया जाना चाहिए -धारा 46ए को अर्थहीन नहीं छोड़ा जा सकता है और इसके लिए सामंजस्यपूर्ण संरचना की आवश्यकता होती है-कानूनों की व्याख्या।

सी. बी. आई. द्वारा दायर अपील को स्वीकार करते हुए और अभियुक्त द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज करते हुए, अदालत ने मानाः

1.1 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधिनियमन का उद्देश्य भ्रष्टाचार विरोधी कानून को और अधिक प्रभावी बनाना और इसके दायरे को व्यापक बनाना था। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए में लोक सेवक की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए जैसा संशोधित किया गया है रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, द्वारा ज़ारी लाइसेंस के तहत काम करने वाली बैंकिंग कंपनी के प्रबंध निदेशक और कार्यकारी निदेशक पहले से ही लोक सेवक थे, इसलिए उन्हें 'लोक सेवक' की परिभाषा से बाहर नहीं किया जा सकता है। आई. पी. सी. की धारा 21 में दी गई 'लोक सेवक' की सामान्य परिभाषा के अनुसार, बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 46-ए सहपठित पी.सी. अधिनियम में दी गई 'लोक सेवक' की परिभाषा, जो उक्त

अधिनियम के तहत अपराधों के उद्देश्यों के लिए आधार रखती है। बैंकिंग व्यवसाय के लिए जिसे भुलाया नहीं जा सकता वह है बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए और केवल इस कारण से कि धारा 161 से 165ए आई.पी.सी. को पी.सी. अधिनियम, 1988 द्वारा निरस्त कर दिया गया है, बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई है। [अनुच्छेद 24] [779 ई. बी-डी]

1.2 जब पी.सी. अधिनियम, 1988 लागू हुआ, तब बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46 पहले से ही लागू थी, और तब से पी. सी. अधिनियम, 1988 का दायरा "लोक सेवक" की परिभाषा का विस्तार करना था, केवल इस कारण से कि 1994 में, "अध्यक्ष" शब्द को स्पष्ट करते हुए, विधायिका ने “पी. सी. अधिनियम, 1988 के प्रयोजनों के लिए” को इन शब्दों से “बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए में दंड संहिता के अध्याय IX के प्रयोजनों के लिए” से प्रतिस्थापित नहीं किया। यह नहीं कहा जा सकता है कि विधायिका का इरादा धारा 46ए को पी.सी.अधिनियम, 1988 के उद्देश्य के लिए अप्रयोज्य बनाने का था जिसके द्वारा धारा 161 से 165ए आई.पी.सी. को हटा दिया गया और अपराधों को पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 से 12 द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। [अनुच्छेद 25] [779-ई-एफ]

1.3 एक कानून जिसे अधिकार से परे नहीं दिखाया गया है, उसे उचित अर्थ दिया जाना चाहिए। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46-ए को अर्थहीन नहीं छोड़ा जा सकता है और इसके लिए सामंजस्यपूर्ण सरंचना की आवश्यकता है। इस प्रकार, विशेष न्यायाधीश (सी.बी.आई.) ने पी.सी. अधिनियम की धारा 13(2) के साथ धारा 13(1) (डी) के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान न लेकर गलती की । हालांकि, धारा 21 आईपीसी के अर्थ में आरोपी को लोक सेवक नहीं कहा जा सकता है, आई.पी.सी. की धारा 409 के तहत ऐसा अपराध आकर्षित नहीं हो सकता है, यह अन्य अपराधों का संज्ञान लेने के लिए निचली अदालत के लिए खुला छोड़ दिया गया है । इसलिए, निचली अदालतों ने उन अभियुक्तों को, जो अध्यक्ष/प्रबंध निदेशक और कार्यकारी निदेशक थे, क्रमशः जी.टी.बी. के अभिनिर्धारित करने में कानूनी रूप से गलती की कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के उद्देश्यों के लिए लोक सेवक नहीं थे । इस तरह के विवादित आदेश को दरकिनार किया जाता है। [अनुच्छेद 26,27] [779-जी-एच; 780-ए-सी]

सरकार आंध्र प्रदेश और अन्य बनाम पी. वेंकू रेड्डी 2002 (2) तितम्बा एससीआर 538: (2002) 7 एस.सी.सी. 631; फेडरल बैंक लिमिटेड बनाम सागर थॉमस और अन्य 2003 (4) तितम्बा एससीआर 121: (2003) 10 एस. सी. सी. 733; महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम बृजलाल सदासुख मोदानी 2015 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 1403; पी. वी.

नरसिंह राव बनाम राज्य (सी. बी. आई./एस. पी. ई.) 1998 (2) एस. सी. आर. 870: (1998) 4 एस. सी. सी. 626; हरियाणा आवास बोर्ड बनाम हरियाणा आवास बोर्ड कर्मचारी संघ और अन्य 1995 (4) तितम्बा एससीआर 533: (1996) 1 एस. सी. सी. 95; मनीष त्रिवेदी बनाम राजस्थान राज्य 2013 (12) एससीआर 205: (2014) 14 एस. सी. सी. 420-संदर्भित।

अनुसार रंजन गोगोई, न्यायाधिपति (पूरक):

1.1 पी.सी.अधिनियम की धारा 2 (बी) में लोक कर्तव्य की परिभाषा वास्तव में व्यापक है। कर्तव्यों का निर्वहन जिसमें राज्य, जनता या बड़े पैमाने पर समुदाय के हित को 'लोक कर्तव्य' अभिव्यक्ति के दायरे में लाया गया है। पी.सी. अधिनियम की धारा 2 (सी) (viii) में निहित लोक सेवक की परिभाषा की अनिवार्यता किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा ऐसे लोक कर्तव्य का पालन करना है जो एक पद धारण कर रहा है, जिसके लिए उसे इस तरह के कर्तव्य का पालन करने की आवश्यकता होती है या उसे अधिकृत किया जाता है। [अनुच्छेद 5] [781-ई-एफ]

1.2 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधिनियमन के लिए बताए गए उद्देश्यों और कारणों में इसे उचित तरह से स्पष्ट किया गया है कि अन्य बातों के साथ-साथ, लोक सेवक की परिभाषा, के दायरे को व्यापक बनाने की परिकल्पना करता है , फिर भी, केवल किसी भी पद के

धारक द्वारा लोक कर्तव्यों का पालन करना पी. सी. अधिनियम की धारा 2 (सी) में निहित 'लोक सेवक' अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर पदधारी को नहीं लाता। धारा 2 (बी) में निहित 'लोक कर्तव्य' की व्यापक परिभाषा किसी भी कार्यालय से जुड़े किसी भी कर्तव्य को शामिल करने में सक्षम होगी क्योंकि समकालीन परिदृश्य में शायद ही कोई ऐसा कार्यालय हो जिसके कर्तव्यों का अंतिम उपाय में, लोक हित या बड़े पैमाने पर समुदाय के हित पर असर न पड़ता हो। लोक सेवक की परिभाषा की इस तरह की व्यापक समझ का प्रभाव निजी कार्यालय या लोक कार्यालय के धारक के बीच सभी अंतरों को मिटाने का हो सकता है जो बनाए रखा जाना चाहिए। इसलिए, मेरे अनुसार कार्यालय और उसमें किए गए कर्तव्यों के संदर्भ में "लोक सेवक" अभिव्यक्ति को समझना अधिक उचित होगा इसके संबंध में को लोक चरित्र का होना चाहिए। [अनुच्छेद 7] [782-ए-डी]

1.3 धारा 46ए को 1994 के अधिनियम धारा20 द्वारा संशोधित किया गया था ताकि बैंकिंग कंपनी के अधिकारियों की एक बड़ी श्रेणी को इसके दायरे में लाया जा सके। इससे पहले, केवल अध्यक्ष, निदेशक और लेखा परीक्षक 46ए के दायरे में आते थे। धारा 46ए के आधार पर, एक बैंकिंग कंपनी (एक निजी बैंकिंग कंपनी सहित) के पदाधिकारी/कर्मचारी पी.सी.अधिनियम के अधिनियमन के साथ अध्याय IX आई. पी. सी. के उद्देश्यों के लिए "लोक सेवक" थे। संहिता के अध्याय IX में शामिल धारा 161 से 165A के तहत अपराधों को उक्त अध्याय IX से हटा दिया गया

और पी. सी. अधिनियम की धारा 7 से 12 के तहत संलग्न किया गया। आई. पी. सी. के अध्याय IX से उक्त प्रावधानों को हटाने और शामिल करने के साथ पी. सी. अधिनियम में उसी के संबंध में बी. आर. अधिनियम की धारा 46ए में एक विशेष प्रविष्टि से उसमें प्रावधान को ज़ारी रखा जाना था किसी बैंकिंग कंपनी के अधिकारियों के संबंध में जहां पी. सी. अधिनियम की धारा 7 से 12 तक के अपराधों का संबंध है । लेकिन, ऐसा नहीं किया गया। न्यायालय को इसके कारणों का अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है, हालांकि, शायद एक संभावित कारण पी. सी. अधिनियम की धारा 2 (सी) द्वारा बनाई गई "लोक सेवक" की परिभाषा का व्यापक विस्तार हो सकता है। ऐसी स्थिति में जहां पी. सी. अधिनियम के अधिनियमन के पीछे विधायी इरादा, अन्य बातों के साथ-साथ, "लोक सेवक" की परिभाषा का विस्तार करना था, बी. आर. अधिनियम की धारा 46ए में पी. सी. अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों को शामिल करने की चूक के बाद आई. पी. सी. की धारा 161 से 165ए को अध्याय IX से हटाने को पूरी तरह से अनपेक्षित विधायी चूक माना जा सकता है। जिसे न्यायालय व्याख्या की प्रक्रिया द्वारा भर सकता है। हालांकि केसस ओमिसस का नियम अर्थात "जिसके लिए क़ानून में प्रावधान नहीं किया गया है, उसे न्यायालयों द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता है" व्याख्या का एक सख्त नियम है जिसमें कुछ जाने-माने अपवाद हैं। [अनुच्छेद 8,10] [782-एफ-एच; 783-ए-ई]

1.4 पी.सी. अधिनियम के अधिनियमन की अनुमति नहीं दी जा सकती है 'लोक सेवक' की परिभाषा को व्यापक बनाने के स्पष्ट इरादे से सुधार के लिए धारा 46ए में जो स्पष्ट चूक है उसको भरने की जिसका न्यायिक असहायता व्यक्त करके चूक है उसे भरें। पी. सी. अधिनियम की धारा 7 से 12 के तहत अपराधों के लिए धारा 46ए में विशेष प्रावधानों को ज़ारी रखने की चूक को स्पष्ट रूप से अनपेक्षित माना जाना चाहिए और इसलिए इसे भरने के लिए न्यायिक क्रिया को स्वीकार करने में सक्षम होना चाहिए। पी.सी. अधिनियम लागू करके "लोक सेवक" की परिभाषा को व्यापक बनाने का स्पष्ट विधायी इरादा बी. आर. अधिनियम की धारा 46ए में चूक को समझना है जो न्यायालय द्वारा भरे जाने में असमर्थ है ।[अनुच्छेद 13] [786-सी-डी]

पी. वी. नरसिंह राव बनाम राज्य (सी. बी. आई./एस. पी. ई.) 1998 (2) एस. सी. आर. 870: (1998) 4 एस. सी. सी. 626; बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम ए राजप्पा और अन्य 1978 (3) एस. सी. आर. 207: (1978) 2 एस. सी. सी. 212; दादी जगन्नाधम बनाम जम्मुलु रामुलु और अन्य 2001 (2) तितम्बा एससीआर 60 : (2001) 7 एस. सी. सी. 71-संदर्भित।

मैकमिलन बनाम गेस्ट (1942) एसी 561; सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स लिमिटेड बनाम आशेर (1949) 2 ऑलेर 155; मागोर और

सेंट मेलन्स ग्रामीण जिला परिषद बनाम न्यूपोर्ट निगम (1950) 2 ऑल ई आर 1226-संदर्भित।

केस लॉज संदर्भ

प्रफुल्ल सी. पंत न्यायाधिपति के निर्णय में,

2002 (2) तितम्बा एससीआर 538	संदर्भित किया गया।	अनुच्छेद 10
2003 (4) तितम्बा एससीआर 121	संदर्भित किया गया।	अनुच्छेद 10
2015 एससीसी ऑनलाइन एससी 1403	संदर्भित किया गया।	अनुच्छेद 19
1998 (2) एससीआर 870	संदर्भित किया गया।	अनुच्छेद 20
1995 (4) तितम्बा एससीआर 533	संदर्भित किया गया।	अनुच्छेद 21
2013 (12) एससीआर 205	संदर्भित किया गया।	अनुच्छेद 22

रंजन गोगोई न्यायाधिपति के फैसले में,

1998 (2) एससीआर 870	संदर्भित किया गया	अनुच्छेद 6
1978 (3) एससीआर 207	संदर्भित किया गया	अनुच्छेद 11
2001 (2) तितम्बा एससीआर 60	संदर्भित किया गया	अनुच्छेद 12

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 1077-1081 /2013

उच्च न्यायालय मुंबई आपराधिक रिट याचिका संख्या 2400/2008 से 2403/2008 तक के साथ आपराधिक संशोधन आवेदन संख्या 131/ 2007 में न्यायपालिका के दिनांकित 13.07.2009 निर्णय और आदेश से।

साथ में

डब्ल्यू.पी. (सी.आर एल.) संख्या 167/ 2015

तुषार मेहता, ए. एस. जी., राणा मुखर्जी, मोहन परासरन, सिद्धार्थ लूथरा, रंजना नारायण, टी. ए. खान, बी. वी. बलराम दास, अरविंद कुमार शर्मा, जी. उमापति, आर. मेखला, राकेश के. शर्मा, बीना गुप्ता, विराज

गांधी, समीर चौधरी, पूर्णिमा राज, अभिसार बैरागी, पल्लव पालित, (एम/एस खेतान एंड कंपनी के लिए) उपस्थित पक्षकारों के लिए।

न्यायालय के निर्णय इनके द्वारा दिया गया था-

प्रफुल्ल सी. पंत, न्यायाधिपति

1. अपीलार्थी केंद्रीय ब्यूरो जाँच (सी. बी. आई.) ने दिनांकित 13.07.2009 निर्णय और आदेश को चुनौती दी है जो बॉम्बे में उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया है जिसके तहत आपराधिक संशोधन आवेदन संख्या 131/2007 (सी. बी. आई. द्वारा दायर) खारिज़ कर दिया गया, और आपराधिक रिट याचिका संख्या 2400, 2401, 2402 और 2403/2008 अभियुक्त/प्रत्यार्थी द्वारा दायर को आंशिक रूप से अनुमति दी गई है और निचली अदालत यानी विशेष न्यायाधीश/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, मुंबई द्वारा पारित दिनांक 05.02.2007 के आदेश को बरकरार रखा गया है। निचली अदालतों ने कहा है कि ग्लोबल ट्रस्ट बैंक के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक रमेश गेली और कार्यकारी निदेशक श्रीधर सुबासरी के खिलाफ़ इस आधार पर संज्ञान नहीं लिया जा सकता है कि वे लोक सेवक नहीं हैं।

2. अभियुक्त रमेश गेली द्वारा आरोप पत्र को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 167 / 2015 दायर की गई है। एफ.आई.आर. संख्या आरसी बीडी 1/2005/ई /

0003 दिनांक 31.03.2005 के संबंध में सी.बी.आई. द्वारा दायर किया गया धारा 120 बी सहपठित धारा 420,467,468,471 भारतीय दंड संहिता (आई.पी.सी.) और दंडनीय अपराधों से संबंधित धारा 13 (2) सहपठित धारा 13 (1) (डी) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में "पी. सी. अधिनियम, 1988"),विशेष न्यायाधीश, सी. बी. आई., पटियाला हाउस कोर्ट, नई दिल्ली के समक्ष लंबित है।

3. संक्षेप में अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि ग्लोबल ट्रस्ट बैंक (इसके बाद "जीटीबी" के रूप में संदर्भित) को दिनांक 29.10.1993 पर कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत बैंकिंग कंपनी के रूप में शामिल किया गया था। उक्त बैंक को रिजर्व बैंक द्वारा बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के तहत दिनांक 06.09.1994 पर लाइसेंस ज़ारी किया गया था (संक्षेप में "RBI") । रमेश गेली (इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाकर्ता) इस बैंक के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक थे, और श्रीधर सुबासरी (उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाकर्ता) इसके कार्यकारी निदेशक थे। दोनों जी.टी.बी. के प्रवर्तक भी थे। पूंजी में योगदान को बढ़ाने के लिए दोनों अभियुक्तों (रमेश गेली और श्रीधर सुबासरी) ने विभिन्न व्यक्तियों और कंपनियों से ऋण प्राप्त किया, जिनमें शामिल हैं -एम/एस अभियुक्त राजेश मेहता और विजय मेहता का ब्यूटीफुल ग्रुप ऑफ कंपनीज और मेसर्स. ट्रिनिटी टेक्नोमिक्स सर्विसेज प्रा. लिमिटेड, जिसमें विजय मेहता और उनके कर्मचारी निदेशक थे। एम/एस ब्यूटीफुल ग्रुप ऑफ

कंपनीज ने अपना पहला खाता जी. टी.बी. में वर्ष 1994-95 में ब्यूटीफुल डायमंड्स लिमिटेड के नाम से खोला । जांच में पाया गया विभिन्न प्रकार की ऋण सुविधाएं ज़िक्र की गई कंपनी को रमेश गेली और श्रीधर सुबासरी द्वारा दी गई और इन्होंने ऋण सुविधाओं को मंजूरी देने के लिए मानदंडों का पालन किए बिना धोखाधड़ी से शाखा प्रमुखों को निर्देश दिए। दोनों (रमेश गेली और श्रीधर सुबासरी) ने अपने आधिकारिक पदों का दुरुपयोग करते हुए मेसर्स को उच्च ऋण सीमा की मंजूरी दी। ब्यूटीफुल डायमंड्स लिमिटेड नियमों के खिलाफ़ उच्च ऋण सीमा की मंजूरी दी । सी.बी.आई. के अनुसार, जाँच में आगे पता चला कि अभियुक्तों की कथित साजिश के अनुसार जी.टी.बी. का धन मोड़ दिया गया, और मैसर्स ब्यूटीफुल रियल्टर्स लिमिटेड के नाम पर 5 करोड़ रुपये ज़ारी किए गए। मेसर्स ब्यूटीफुल डायमंड्स लिमिटेड के निदेशकों के अनुरोध पर। कथित राशि को आगे मैसर्स ब्यूटीफुल डायमंड्स लिमिटेड के पहले से ही ओवरड्रॉन में स्थानांतरित कर दिया गया अप्रैल 2001 में निदेशक ब्यूटीफुल ग्रुप ऑफ कंपनीज ने अन्य आरोपी के साथ साज़िश के तहत मैसर्स क्रिस्टल जेम्स के नाम पर रु.3.00 करोड़ के ऋण के लिए आवेदन किया । रमेश गेली, श्रीधर सुबासरी और अन्य आरोपी जो ब्यूटीफुल ग्रुप ऑफ कंपनीज के निदेशक द्वारा जी.टी.बी. को गलत तरीके से कुल हानि लगभग रु 41.00 करोड़ का पहुंचाना बताया गया । ब्यूटीफुल डायमंड्स लिमिटेड और अन्य के खाते जी. टी. बी. से धन प्राप्त करने वाली

कंपनियों को गैर-निष्पादित परिसंपत्ति (एन. पी. ए.) घोषित किया जाना चाहिए था, लेकिन रमेश गेली और श्रीधर सुबासरी ने कथित रूप से हेरफेर किया और ब्यूटीफुल रियल्टर्स लिमिटेड और क्रिस्टल जेम्स के खातों को उच्च लाभ कमाने वाले खातों के रूप में दिखाया। 2005 तक घोटाला सामने नहीं आया था।

4. 14.08.2004 पर जी.टी.बी. का ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स (संक्षिप्तता "ओ.बी.सी". के लिए) के साथ विलय/एकीकरण किया गया। मुख्य सतर्कता अधिकारी, ओ.बी.सी. द्वारा की गई शिकायत पर सी.बी.आई. द्वारा आई.पी.सी. की धारा 420,467,468,471 और पी.सी. अधिनियम 1988 की धारा 13 (1) (डी) सहपठित धारा 13 (2) के तहत दंडनीय अपराधों के संबंध में दिनांक 31.03.2005 पर एक एफ.ई.आर. दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि रमेश गेली और मैसर्स वर्ल्ड टेक्स लिमिटेड (संक्षेप में "डब्ल्यू. टी. एल") के निदेशकों सहित अन्य ने जी. टी. बी. को धोखा देने के लिए एक आपराधिक साजिश रची जिससे कंपनी को गलत तरीके से रु. 17.46 करोड़, का नुकसान हुआ और इस तरह संबंधित गलत लाभ अर्जित किया। जाँच के बाद, विशेष न्यायाधीश, सी. बी. आई., पटियाला हाउस कोर्ट, नई दिल्ली के समक्ष उक्त मामले में आरोप पत्र दायर किया गया था।

5. एक अन्य प्रथम सूचना रिपोर्ट सं. आर सी.12 (ई)/2005/सी. बी. आई./बी. एस. एंड एफ. सी./मुंबई को सी. बी. आई. द्वारा 09.08.2005 पर अपराधों के लिए दर्ज किया गया था आई. पी. सी. की धारा 409 और 420 सहपठित धारा 120 बी के तहत दंडनीय, शुरू में जी. टी. बी. के दो कर्मचारियों और दो निजी व्यक्तियों राजेश मेहता और प्रशांत मेहता के खिलाफ़ दिनांक 26.07.2005 की मुख्य सतर्कता अधिकारी, ओ. बी. सी. द्वारा दर्ज कराई गई शिकायत पर। यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि अगस्त 2004 में लोक क्षेत्र के बैंक ओ. बी. सी. के साथ विलय से पहले जी. टी. बी. एक निजी क्षेत्र का बैंक था। एफ. आई. आर. नं. आरसी 12 ई/2005/सी. बी. आई./बी. एस. और एफसी/मुंबई दिनांक 09.08.2005, यह आरोप लगाया गया था कि जी. टी. बी. ने सभी विवेकपूर्ण बैंकिंग मानदंडों को हवा में फेंककर ऋणों को मंजूरी दी और वितरित किया और इस तरह हजारों जमाकर्ताओं के हितों को खतरे में डालते हुए बड़ी मात्रा में गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (एन. पी. ए.) का निर्माण किया, लेकिन एक सुंदर वित्तीय तस्वीर पेश की। ओ. बी. सी. के साथ जी. टी. बी. के विलय के बाद लेखा परीक्षा के दौरान ये ऋण लेनदेन सामने आए और यह ध्यान दिया गया कि दो खाते, अर्थात् मैसर्स ब्यूटीफुल डायमंड्स लिमिटेड और मैसर्स क्रिस्टल जेम्स के खाते का उपयोग बैंक से धन निकालने के लिए किया जाता था। जाँच के बाद, आई. पी. सी. की धारा 409 और 420 सहपठित धारा 120 बी और पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 13 (1)

(डी) सहपठित धारा 13 (2) के तहत दंडनीय अपराधों के संबंध में विशेष न्यायाधीश, मुंबई के समक्ष आरोप पत्र दायर किए गए। हालाँकि, 05.02.2007 पर विशेष न्यायाधीश, मुंबई ने धारा 3 (1) (डी) पी. सी. अधिनियम, 1988 सहपठित धारा 13 (2) के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान लेने से इंकार कर दिया इस आधार पर कि अभियुक्त संख्या 1 रमेश गेली और अभियुक्त संख्या 2 श्रीधर सुबासरी लेन देन की तारीखों पर लोक सेवक नहीं थे अर्थात् कहा एकीकरण से पहले हुए थे और विशेष न्यायाधीश ने निर्देश दिया कि आरोप पत्र को वापस किया जा सकता है आई. पी. सी. के तहत दंडनीय अपराधों के संबंध में उपयुक्त महानगर मजिस्ट्रेट को संज्ञान लेने के लिए , यानी आई.पी.सी. अधिनियम, 1988 के तहत दंडनीय अपराध के अलावा अन्य अपराध के लिए।

6. चूंकि बॉम्बे में उच्च न्यायालय ने विवादित आदेश द्वारा दिनांकित 05.02.2007 आदेश को बरकरार रखा है, इसलिए सीबीआई ने इस न्यायालय का रूख़ किया है विशेष अनुमति के माध्यम से । इसके अलावा, डब्ल्यू.पी. (सीआरएल।) अभियुक्त रमेश गेली द्वारा दायर सं. 167/2015 में भी दिल्ली के मामले में कानून का समान प्रश्न शामिल है, क्योंकि दोनों संबंधित मामलों का निपटारा इस सामान्य आदेश द्वारा किया जा रहा है।

7. इन आपराधिक अपीलों में कानून का सामान्य प्रश्न शामिल है और संबंधित रिट याचिका, हमारे समक्ष दायर की गई हैः

क्या ग्लोबल ट्रस्ट बैंक लिमिटेड (ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स के साथ विलय से पहले एक निजी बैंक) के अध्यक्ष, निदेशक और अधिकारियों को लोक सेवक कहा जा सकता है। उनके अभियोजन के प्रयोजनों के लिए अपराधों के संबंध में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत दंडनीय है या नहीं?

8. यह तथ्य स्वीकार किया जाता है कि जी. टी. बी. एक निजी क्षेत्र का बैंक था जिसका संचालन होता था भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिनांक 06.09.1994 को ज़ारी बैंकिंग लाइसेंस बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के तहत। यह भी विवादित नहीं है कि 14.08.2004 पर जी.टी.बी. का ओ.बी.सी. के साथ विलय/एकीकरण हो गया। कथित धोखाधड़ी, बेईमानी, गबन और भ्रष्टाचार के लेन-देन 1994 से 2001 के बीच की अवधि से संबंधित हैं, यानी लोक क्षेत्र के बैंक (ओ.बी. सी.) के साथ विलय से पहले। विवाद इस बात से संबंधित है कि क्या जी.टी.बी. के तत्कालीन अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक और कार्यकारी निदेशक लोक सेवक अधिनियम, 1988 के प्रयोजनों के लिए लोक सेवक की परिभाषा के तहत आते हैं या नहीं।

9. श्री मोहन परासरन और सिद्धार्थ लूथरा,अभियुक्तों की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने इसका जोरदार तर्क दिया है कहा कि अभियुक्त लोक सेवक नहीं हैं, और रिट याचिकाकर्ता रमेश गेली और अभियुक्त/प्रतिवादी श्रीधर सुबासरी के खिलाफ़ संज्ञान नहीं लिया जा सकता है, जिन्हें इसके विलय से पहले जीटीबी का क्रमशः अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक और कार्यकारी निदेशक कहा जाता था। आगे यह तर्क दिया जाता है कि किसी व्यक्ति को लोक कर्तव्य का पालन करने वाला नहीं कहा जा सकता है जब तक कि वह कुछ लोक पद नहीं रखता है, और इस संबंध में यह प्रस्तुत किया जाता है कि अभियुक्त ने उस अवधि के दौरान कोई लोक पद नहीं संभाला था, जिसके बारे में कहा जाता है कि अपराध किए गए थे। यह भी तर्क दिया जाता है कि चूंकि आई.पी.सी. के अध्याय IX में धारा 161 से 165ए को पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 31 द्वारा निरस्त किया जाता है, इसलिए बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए अभियोजन पक्ष के लिए बहुत कम सहायक है। श्री लूथरा, विद्वान वरिष्ठ वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि बैंक के ग्राहक और बैंक के बीच संबंध लेनदार और देनदार का है, और दोनों के बीच लेनदेन वाणिज्यिक प्रकृति के हैं, इसलिए इसमें कोई लोक कर्तव्य शामिल नहीं है।

10. दूसरी ओर, सी. बी. आई. के वरिष्ठ वकील श्री तुषार मेहता ने तर्क दिया कि आरोपी रमेश गेली और श्रीधर सुबासरी पी.सी.अधिनियम 1988 की धारा 2 (सी) में निहित परिभाषा को ध्यान में रखते हुए लोक

सेवक हैं। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसमें प्रावधान है कि किसी बैंकिंग कंपनी के पूर्णकालिक अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक या निदेशक को लोक सेवक माना जाएगा। यह भी तर्क दिया जाता है कि एक बैंकिंग कंपनी बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 35 (ए) के सहपठित धारा 5 (बी) के तहत परिभाषित, भारतीय रिजर्व बैंक की विस्तारित शाखा के अलावा और कुछ नहीं है। सी.बी.आई. की ओर से दी गई दलीलों के समर्थन में, इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के सिद्धांत पर निर्भरता रखी गई है। आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम पी. वेंकूरेड्डी (2002) 7 एससीसी 631 में निर्धारित कानून के सिद्धांत पर निर्भरता रखी गई है। अंत में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि वास्तव में लोक कर्तव्य या लोक प्रकृति के सकारात्मक दायित्व का निर्वहन करने वाला एक निजी निकाय लोक कार्य करता है। इस संबंध में, फेडरल बैंक लिमिटेड बनाम सागर थॉमस और अन्य (2003) 10 एससीसी 733 में अनुच्छेद 18 में इस अदालत द्वारा की गई टिप्पणियों का संदर्भ दिया गया था।

11. हमने तर्कों और विरोधी तर्कों पर विचार किया है और इस मुद्दे पर प्रासंगिक मामले के कानूनों को भी देखा।

12. आगे की चर्चा से पहले उद्देश्य की जांच करना सही और उचित है जिसके लिए संसद द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988

अधिनियमित किया गया था। विधेयक के उद्देश्यों और कारणों का विवरण है नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः-

"1. इस विधेयक का आशय मौजूदा भ्रष्टाचार विरोधी कानूनों कोका दायरा बढ़ाकर उन्हें अधिक प्रभावी बनाना है उनका दायरा बढ़ाकर और प्रावधानों को मज़बूत करके।

2. संथानन समिति की सिफारिशों के आधार पर 1964 में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 में संशोधन किया गया था। भारतीय दंड संहिता के अध्याय IX में लोक सेवकों और उन्हें आपराधिक दुराचार के ज़रिए उकसाने वालों से निपटने के लिए प्रावधान हैं। आपराधिक कानून संशोधन अध्यादेश, 1944 में ऐसी संपत्ति के हस्तांतरणकर्ताओं सहित भ्रष्ट साधनों के माध्यम से प्राप्त अवैध रूप से अर्जित संपत्ति को कुर्क करने के लिए भी प्रावधान हैं। विधेयक में इन सभी प्रावधानों को संशोधनों के साथ शामिल करने का प्रयास किया गया है ताकि प्रावधानों को लोक सेवकों के बीच भ्रष्टाचार से निपटाने के लिए और अधिक प्रभावी बनाया जा सके।

3. विधेयक में अन्य बातों के साथ-साथ 'लोक सेवक' शब्द की परिभाषा के दायरे को व्यापक बनाने की कल्पना की गई है, भारतीय दंड संहिता की धारा 161 से 165ए के तहत अपराधों को शामिल करने, इन अपराधों के लिए प्रदान किए गए दंड को बढ़ाने और एक प्रावधान को शामिल करने की परिकल्पना की गई है कि अभियोजन की मंजूरी को

बरकरार रखने वाला विचारण न्यायालय का आदेश अंतिम होगा यदि इसे पहले ही चुनौती नहीं दी गई है और मुकदमा शुरू हो गया है। कार्यवाही में तेजी लाने के लिए, मामलों की दिन-प्रतिदिन की सुनवाई के प्रावधान और स्थगन देने और पुनरीक्षण या अंतरिम आदेशों की शक्तियों के प्रयोग के संबंध में निषेधात्मक प्रावधानों को भी शामिल किया गया है।

4. चूंकि प्रस्तावित कानून में धारा 161 ए के प्रावधानों को बढ़ी हुई सजा के साथ शामिल किया गया है, इसलिए उन धाराओं को भारतीय दंड संहिता में बनाए रखना आवश्यक नहीं है। परिणामस्वरूप, आवश्यक बचत प्रावधान वाले उन अनुभागों को हटाने का प्रस्ताव है।

5. खंडों पर टिप्पणियाँ बिल प्रावधानों की विस्तार से व्याख्या करती हैं।" (जोर दिया गया)

पी.सी.अधिनियम के उद्देश्यों एवं कारणों के कथन से विधेयक से यह स्पष्ट है कि इस अधिनियम का उद्देश्य भ्रष्टाचार विरोधी कानून का दायरा बढ़ाकर उसे और अधिक प्रभावी बनाना था। यह भी स्पष्ट है कि यह विधेयक लोक सेवक की परिभाषा का दायरा बढ़ाने के लिए लाया गया था।' पी.सी. अधिनियम, 1988,से पहले यह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 और आईपीसी के अध्याय IX में धारा 161 से 165 ए था जो भ्रष्टाचार की रोकथाम से संबंधित कानून के क्षेत्र को नियंत्रित कर रहा था। संसद ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 को निरस्त कर दिया और

आईपीसी की धारा 30 और 31 के तहत प्रावधानित आईपीसी की धारा 161 से 165ए को भी हटा दिया। चूंकि लोक सेवक की एक नई परिभाषा पी.सी.अधिनियम, 1988 के अंतर्गत दी गई है, आईपीसी की धारा 21 में दी गई 'लोक सेवक' की परिभाषा को पुन: प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है।

13. पी. सी. अधिनियम, 1988 की धारा 2 (सी), जो इस आधार को धारण करती है, 'लोक सेवक' निम्नानुसार परिभाषित करती है :-

"2. (सी) "लोक सेवक" का अर्थ है

(i) सरकार की सेवा या वेतन में कोई भी व्यक्ति या सरकार द्वारा शुल्क या कमीशन द्वारा पारिश्रमिक प्राप्त किसी भी लोक कर्तव्य का पालन करने हेतु;

(ii) स्थानीय प्राधिकारी की सेवा या वेतन में कोई भी व्यक्ति;

(iii) स्थापित निगम की सेवा या वेतन में कोई भी व्यक्ति केंद्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम या किसी प्राधिकरण द्वारा या उसके तहत या सरकार के स्वामित्व या नियंत्रित या सहायता प्राप्त निकाय या एक सरकारी कंपनी धारा 617 कंपनी अधिनियम, 1956 में परिभाषित ।

(iv) कोई भी न्यायाधीश, कानून द्वारा निर्वहन के लिए सशक्त कोई भी व्यक्ति शामिल है चाहे स्वयं से हो या किसी व्यक्तियों के निकाय के सदस्य के रूप में, किसी भी न्यायिक कार्य का निर्वहन कर सके;

(v) न्याय के प्रशासन के संबंध में किसी भी कर्तव्य को पूरा करने के लिए न्याय की अदालत द्वारा अधिकृत कोई भी व्यक्ति, जिसमें ऐसी अदालत द्वारा नियुक्त परिसमापक, रिसीवर या आयुक्त शामिल हैं;

(vi) कोई भी मध्यस्थ या अन्य व्यक्ति जिसे किसी न्यायालय या सक्षम लोक प्राधिकारी द्वारा निर्णय या रिपोर्ट के लिए कोई कारण या मामला भेजा गया हो;

(vii) कोई भी व्यक्ति जो ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर उसे मतदाता सूची तैयार करने, प्रकाशित करने, बनाए रखने या संशोधित करने या चुनाव या चुनाव का हिस्सा आयोजित करने का अधिकार है;

(viii) कोई भी व्यक्ति जो कोई ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर वह किसी लोक कर्तव्य को निभाने के लिए अधिकृत या अपेक्षित है;

(ix) कोई भी व्यक्ति जो अध्यक्ष, सचिव या अन्य कार्यालय कृषि, उद्योग, व्यापार या बैंकिंग में लगी एक पंजीकृत सहकारी समिति के धारक हैं, केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम या किसी प्राधिकरण द्वारा या उसके तहत स्थापित किसी निगम से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त कर रहे हैं या प्राप्त कर रहे हैं। या सरकार के

स्वामित्व या नियंत्रण या सहायता प्राप्त निकाय या कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 617 में परिभाषित सरकारी कंपनी;

(x) कोई भी व्यक्ति जो किसी भी सेवा आयोग या बोर्ड का अध्यक्ष, सदस्य या कर्मचारी है, चाहे वह किसी भी नाम से जाना जाता हो, या ऐसे आयोग या बोर्ड द्वारा किसी परीक्षा के संचालन या ऐसे आयोग की ओर से कोई चयन करने के लिए नियुक्त किसी चयन समिति या बोर्ड का सदस्य हो;

(xi) कोई भी व्यक्ति जो किसी विश्वविद्यालय का कुलपति या किसी शासी निकाय का सदस्य, प्रोफेसर, रीडर, व्याख्याता या कोई अन्य शिक्षक या कर्मचारी है, चाहे वह किसी भी पदनाम से जाना जाता हो और कोई भी व्यक्ति जिसकी सेवाओं का लाभ किसी विश्वविद्यालय या कोई अन्य लोक प्राधिकरण द्वारा लिया गया हो या परीक्षा आयोजित करने या संचालित करने के संबंध में ;

(xii) कोई भी व्यक्ति जो किसी शैक्षिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या अन्य संस्थान का पदाधिकारी या कर्मचारी है, चाहे वह किसी भी तरीके से स्थापित हो, केंद्र सरकार या किसी राज्य सरकार या स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकरण से कोई वित्तीय सहायता प्राप्त की हो या प्राप्त कर रहा हो।

स्पष्टीकरण 1.-उपरोक्त उप-खंडों में से किसी के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति लोक सेवक हैं, चाहे सरकार द्वारा नियुक्त किया गया हो या नहीं। स्पष्टीकरण 2.-जहां कहीं भी "लोक सेवक" शब्द आते हैं, उन्हें हर उस व्यक्ति के लिए समझा जाएगा जिसके पास लोक सेवक की स्थिति का वास्तविक अधिकार है, चाहे उस स्थिति को धारण करने के उसके अधिकार में कोई भी कानूनी दोष हो।

14. उपरोक्त परिभाषा से पता चलता है कि पी.सी.अधिनियम, 1988 की धारा 2(सी) में निहित खंड (viii) के तहत एक व्यक्ति जो कोई ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर वह किसी लोक कर्तव्य को निभाने के लिए अधिकृत या अपेक्षित है, एक लोक सेवक है। अब, वर्तमान मामले के प्रयोजनों के लिए इस अदालत को यह जांचने की आवश्यकता है कि क्या बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के तहत आरबीआई द्वारा ज़ारीलाइसेंस के तहत काम करने वाले एक निजी बैंक के अध्यक्ष/प्रबंध निदेशक या कार्यकारी निदेशक ने एक कार्यालय अधिकार में रखा /रखा है और कार्य किया है। / ऊपर उद्धृत 'लोक सेवक' की परिभाषा को आकर्षित करने के लिए लोक कर्तव्य का पालन करता है।

15. धारा 2(बी) पी.सी. अधिनियम, 1988 'लोक कर्तव्य' को निम्नानुसार परिभाषित करता है। "लोक कर्तव्य" का अर्थ एक कर्तव्य है जिसके निर्वहन में राज्य, जनता या बड़े पैमाने पर समुदाय का हित है"।

16. लेकिन, इस मामले के प्रयोजन के लिए जो सबसे अधिक प्रासंगिक है वह बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए है, जो इस प्रकार है: -

> "46ए. अध्यक्ष, निदेशक आदि, भारतीय दंड संहिता के अध्याय IX के प्रयोजनों के लिए लोक सेवक होंगे।- प्रत्येक अध्यक्ष जो पूर्णकालिक आधार पर नियुक्त किया जाता है, प्रबंध निदेशक, निदेशक, लेखा परीक्षक, परिसमापक, प्रबंधक और बैंकिंग कंपनी के किसी भी अन्य कर्मचारी को एक लोक सेवक माना जाएगा भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय IX के प्रयोजनों के लिए ।" (जोर दिया गया)

17. 14.01.1957 से अधिनियम संख्या 95/56 द्वारा बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 में धारा 46ए डाली गई थी। 31.01.1994 से अधिनियम संख्या 20/94 द्वारा "प्रत्येक अध्यक्ष, निदेशक, लेखा परीक्षक" के स्थान पर अभिव्यक्ति "प्रत्येक अध्यक्ष जो पूर्णकालिक आधार पर नियुक्त किया जाता है, प्रबंध निदेशक, निदेशक, लेखा परीक्षक" को प्रतिस्थापित किया गया था। वैसे तो किसी बैंकिंग कंपनी के प्रबंध निदेशक को भी एक लोक सेवक माना जाता है। वर्तमान मामले में विचाराधीन लेनदेन 31.01.1994 के बाद की अवधि से संबंधित हैं।

18. फेडरल बैंक लिमिटेड बनाम सागर थॉमस और अन्य (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने माना है कि एक अनुसूचित बैंक के रूप में बैंकिंग व्यवसाय करने वाली एक निजी कंपनी को कोई वैधानिक या लोक कर्तव्य निभाने वाली कंपनी नहीं कहा जा सकता है। हालाँकि, उक्त मामले में न्यायालय इस बात की जांच कर रहा था कि क्या किसी अनुसूचित बैंक के खिलाफ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट ज़ारी की जा सकती है या नहीं। कोर्ट के समक्ष कोई मुद्दा नहीं किसी बैंकिंग कंपनी के अध्यक्ष/प्रबंध निदेशक या निदेशक के संबंध में बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए में निहित कल्पना से संबंधित, जिसके खिलाफ भ्रष्टाचार विरोधी अपराध दर्ज किया गया था।

19. महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम बृजलाल सदासुख मोदानी' 2015 एससीसी ऑनलाइन एससी 1403 के एक हालिया मामले में इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:-

> "21. जैसा कि हमने देखा, उच्च न्यायालय वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 12 की अवधारणा, 1949 अधिनियम में निहित प्रावधानों और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अस्थिर तरीके से प्रभावित हुआ है कि बहु-राज्य समाज सरकार द्वारा नियंत्रित या सहायता प्राप्त नहीं है, निष्कर्ष पर पहुंचा है। हमारी सुविचारित राय में, समाज की स्थापना

के समय या किसी निर्माण या किसी संरचनात्मक अवधारणा या किसी भी पहलू में कोई भी अनुदान या कोई सहायता भी एक सहायता ही होगी। हम इच्छुक हैं ऐसा सोचने के लिए क्योंकि 'सहायता' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। समाज को सहायता का एक छिड़काव भी एक कर्मचारी को 'लोक सेवक' की परिभाषा में लाएगा। संपूर्ण अवधारणा को भ्रष्टाचार की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए।"

20. पी.वी.नरसिम्हा राव बनाम राज्य (सीबीआई/एसपीई) (1998) 4 एससीसी 626 में इस न्यायालय ने "कार्यालय" शब्द की व्याख्या निम्नलिखित तरीके से की है: -

"61. ....."कार्यालय" शब्द का अर्थ आम तौर पर "एक पद जिसके साथ कुछ कर्तव्य जुड़े होते हैं, विशेष रूप से विश्वास का स्थान, अधिकार या गठित प्राधिकरण के तहत सेवा" समझा जाता है। (देखें: ऑक्सफोर्ड शॉर्टर इंग्लिश डिक्शनरी, तीसरा संस्करण, पृष्ठ 1362.) मैकमिलन बनाम गेस्ट (1942 एसी 561) में लॉर्ड राइट ने कहा है:

'कार्यालय' शब्द अनिश्चित तत्वों का है। इसके विभिन्न अर्थ न्यू इंग्लिश डिक्शनरी के चार स्तंभों को कवर करते हैं,

लेकिन मैं इस मामले के प्रयोजनों के लिए निम्नलिखित को सबसे अधिक प्रासंगिक मानता हूं: 'एक पद या स्थान जिसके साथ कुछ कर्तव्य जुड़े हुए हैं, विशेष रूप से कमोबेश लोक चरित्र में से एक।"

उसी मामले में लॉर्ड एटकिन ने निम्नलिखित अर्थ दिया:

"... एक कार्यालय या रोजगार जो निर्वाह, स्थायी, मूल पद था, जिसका अस्तित्व उसे भरने वाले व्यक्ति से स्वतंत्र था, जो चलता रहा और क्रमिक धारकों द्वारा उत्तराधिकार में भरा गया।"

स्टेट्समैन (पी) लिमिटेड बनाम एच.आर. देब (एआईआर 1968 एससी 1495) और महादेव बनाम शंटीभाई [(1969) 2 एससीआर 422] में इस न्यायालय ने लॉर्ड राइट द्वारा दिए गए अर्थ को अपनाया है जब यह कहा था:

"एक कार्यालय का मतलब उस पद से अधिक कुछ नहीं है जिसके साथ कुछ कर्तव्य जुड़े हुए हैं।"

21. अभियुक्त की तरफ़ से इस अदालत का ध्यान हाउसिंग बोर्ड ऑफ हरियाणा बनाम हरियाणा हाउसिंग बोर्ड कर्मचारी संघ और अन्य (1996) 1 एससीसी 95 के मामले की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें इस न्यायालय ने माना है कि जब प्रजाति के एक वर्ग से संबंधित विशेष

शब्द होते हैं सामान्य शब्दों के बाद, बाद वाले, अर्थात्, सामान्य शब्दों को उसी प्रकार की चीजों तक सीमित माना जाता है जैसा कि निर्दिष्ट किया गया है, और इसे एजुस्डेम जेनेरिस के नियम के रूप में जाना जाता है जो निर्दिष्ट और सामान्य शब्दों के बीच असंगतता को सुलझाने के प्रयास को दर्शाता है। यह मामला मौजूदा मामले में आरोपियों के लिए बहुत कम मददगार है क्योंकि बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए में प्रबंध निदेशक और निदेशक का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

22. मनीष त्रिवेदी बनाम राजस्थान राज्य (2014) 14 एससीसी 420 में, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत एक पार्षद के खिलाफ़ दर्ज मामले से संबंधित है, इस न्यायालय ने "लोक सेवक" शब्द की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित टिप्पणियां कीं: -

> "14. राजस्थान नगर पालिका अधिनियम, 1959 की धारा 87 प्रत्येक सदस्य को दंड संहिता, 1860 की धारा 21 के अर्थ के तहत लोक सेवक बनाती है और इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:
>
> "87. सदस्यों आदि को लोक सेवक माना जाएगा। (1) प्रत्येक सदस्य, अधिकारी या सेवक, और किसी भी नगरपालिका कर की वसूली के प्रत्येक पट्टेदार, और ऐसे किसी भी पट्टेदार के प्रत्येक सेवक या अन्य कर्मचारी को

लोक दंड संहिता, 1860 (1860 का केंद्रीय अधिनियम 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक माना जाएगा।

(2) उस संहिता की धारा 161 में 'कानूनी पारिश्रमिक' की परिभाषा में 'सरकार' शब्द, इस धारा की उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए, एक नगर निगम बोर्ड को शामिल माना जाएगा।

उपरोक्त प्रावधान को स्पष्ट रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट है कि उपरोक्त धारा के द्वारा विधायिका ने एक कल्पना रची है कि प्रत्येक सदस्य को दंड संहिता धारा 21 के अर्थ के भीतर एक लोक सेवक माना जाएगा। यह सर्वविदित है कि विधायिका कानूनी कल्पना रचने में सक्षम है। एक ऐसे तथ्य के अस्तित्व को मानने के उद्देश्य से एक विशेष प्रावधान अधिनियमित किया जाता है जो वास्तव में मौजूद नहीं है। जब विधायिका एक कानूनी कल्पना रचती है। अदालत को यह सुनिश्चित करना होगा कि कल्पना किस उद्देश्य से बनाई गई है और यह सुनिश्चित करने के बाद, उन सभी तथ्यों और परिणामों को मानना होगा जो कल्पना को प्रभावी बनाने के लिए आकस्मिक या अपरिहार्य परिणाम हैं। हमारी राय में, विधायिका ने, धारा 87 को अधिनियमित

करते समय, यह मानने के उद्देश्य से एक कानूनी कल्पना रची है कि सदस्य, अन्यथा, दंड संहिता की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक नहीं हो सकते हैं, लेकिन माना जाएगा इस प्रकार रची गई कानूनी कल्पना को देखते हुए ऐसा ही होना चाहिए। उपरोक्त के मद्देनजर, इस निष्कर्ष से बच नहीं सकते कि अपीलकर्ता दंड संहिता की धारा 21 के अर्थ के तहत एक लोक सेवक है।

XXX XXX XXX

16. राजस्थान नगर पालिका अधिनियम की योजना के तहत यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता एक पार्षद और बोर्ड का सदस्य है। इसके अलावा, राजस्थान नगर पालिका अधिनियम की धारा 87 की भाषा को ध्यान में रखते हुए, वह दंड संहिता की धारा 21 के अर्थ में एक लोक सेवक है। यदि यह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 के तहत अभियोजन का मामला होता तो मामला यहीं खत्म हो गया होता। इस अधिनियम की धारा 2 में "लोक सेवक" का अर्थ लोक सेवक है जैसा कि दंड संहिता की धारा 21 के तहत परिभाषित किया गया है। हालाँकि, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत, जिसके साथ हम वर्तमान

अपील में चिंतित हैं, "लोक सेवक" शब्द को उसकी धारा 2 (सी) के तहत परिभाषित किया गया है। हमारी राय में, इस अधिनियम के तहत अभियोजन केवल ऐसे व्यक्तियों पर ही हो सकता है, जो इसमें लोक सेवक की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 और दंड संहिता की धारा 21 के तहत "लोक सेवक" की परिभाषा का कोई महत्व नहीं है। अपीलकर्ता पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत मुकदमा चलाने की मांग की गई है। इसलिए, उसकी स्थिति निर्धारित करने के लिए राजस्थान नगर पालिका अधिनियम के प्रावधानों सहपठित धारा 2(सी) के तहत इसकी व्याख्या पर गौर करना आवश्यक होगा।

XXX XXX XXX

19. वर्तमान अधिनियम (1988 अधिनियम) में "लोक सेवक" अभिव्यक्ति की परिभाषा के दायरे को बढ़ाने की परिकल्पना की गई है। लोक प्रशासन को शुद्ध करने के लिए इसे लागू किया गया। विधायिका ने लोक सेवकों के बीच भ्रष्टाचार को रोकने और दंडित करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए "लोक सेवक" की व्यापक परिभाषा का

उपयोग किया है। इसलिए, परिभाषा खंड की तत्वों को एक संरचना द्वारा सीमित करना अनुचित होगा जो क़ानून की भावना के विरुद्ध होगा। इस सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, जब हम अपीलकर्ता, के मामले पर विचार करते हैं तो हमें कोई संदेह नहीं होता है कि वह अधिनियम की धारा 2 (सी) का लोक सेवक है। वर्तमान अधिनियम की धारा 2(सी) का खंड (viii) किसी भी व्यक्ति को, जो कोई ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर वह किसी लोक कर्तव्य को निभाने के लिए अधिकृत या अपेक्षित है, लोक सेवक बनाता है। "कार्यालय" शब्द अनिश्चित अर्थ का है और, वर्तमान संदर्भ में, इसका मतलब एक पद या स्थान होगा जिसके साथ कुछ कर्तव्य जुड़े हुए हैं और इसका अस्तित्व है जो इसे भरने वाले व्यक्तियों से स्वतंत्र है। पार्षद और बोर्ड के सदस्य ऐसे पद हैं जो राजस्थान नगर पालिका अधिनियम के तहत मौजूद हैं। यह इसे भरने वाले व्यक्ति से स्वतंत्र है। वे लोक कर्तव्य के क्षेत्र में विभिन्न कर्तव्यों का पालन करते हैं। हमने ऊपर जो देखा उसके परिप्रेक्ष्य से, यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2(सी)(viii) के तहत एक लोक सेवक है।"

(जोर दिया गया)

23. अंत में यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि सरकार ए.पी. और अन्य बनाम वेंकू रेड्डी (उपरोक्त), मामले में जिसमें 'लोक सेवक' शब्द की व्याख्या करते समय इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ की हैं:

> "12. 1988 अधिनियम की धारा 2 के खंड (सी) में "लोक सेवक" की परिभाषा को परिभाषित करने में, अदालत को एक उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है जो विधायिका के इरादे को प्रभावी बनाएगा। उस दृष्टिकोण से अधिनियम को पारित करने के लिए विधेयक में निहित उद्देश्यों और कारणों के कथन की सहायता ली जा सकती है। यह उस पृष्ठभूमि को बताता है जिसमें कानून अधिनियमित किया गया था। वर्तमान अधिनियम, बल सहित "लोक सेवक" की बहुत व्यापक परिभाषा के साथ लाया गया था लोक प्रशासन को शुद्ध करने के लिए । जब विधायिका ने सरकारी और अर्ध-सरकारी विभागों में बढ़ते भ्रष्टाचार को रोकने और दंडित करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए "लोक सेवक" की इतनी व्यापक परिभाषा का उपयोग किया है, तो परिभाषा खंड के तत्वों को संरचना द्वारा सीमित न करना उचित होगा जो क़ानून की भावना के विरुद्ध होगा। "लोक सेवक" की परिभाषा, इसलिए, एक विस्तृत संरचना

का योग्य है। (एमपी राज्य बनाम श्री राम सिंह (2000) 5 एससीसी 88 देखें)"

24. उपरोक्तानुसार इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, यह स्पष्ट है कि पी.सी. अधिनियमन 1988 का उद्देश्य भ्रष्टाचार विरोधी कानून को अधिक प्रभावी बनाने और इसके दायरे को व्यापक बनाने के लिए था। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46 ए में लोक सेवक की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा ज़ारी लाइसेंस के तहत काम करने वाली बैंकिंग कंपनी के प्रबंध निदेशक और कार्यकारी निदेशक पहले से ही लोक सेवक थे, इसलिए उन्हें 'लोक सेवक' की परिभाषा से बाहर नहीं रखा जा सकता है। हमारा विचार है कि आईपीसी की धारा 21 में दी गई लोक सेवक की सामान्य परिभाषा की तुलना में, यह पी.सी.अधिनियम, 1988, में दी गई 'लोक सेवक' की परिभाषा है बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 46-ए के साथ पढ़ा जाता है, जो उक्त अधिनियम के तहत अपराधों के प्रयोजनों के लिए आधार रखता है। बैंकिंग व्यवसाय के लिए बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए को नहीं भुलाया जा सकता है और केवल इस कारण से कि आईपीसी की धारा 161 से 165ए को पी.सी.अधिनियम, 1988, द्वारा निरस्त कर दिया गया है। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए की प्रासंगिकता ख़त्म नहीं हुई है।

25. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जब भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 लागू हुआ, तो बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46 पहले से ही लागू थी, और चूंकि पी. सी. अधिनियम, 1988 का दायरा "लोक सेवक" की परिभाषा को व्यापक बनाना था। इस प्रकार, केवल इस कारण से कि 1994 में, "अध्यक्ष" शब्द को स्पष्ट करते हुए, विधायिका ने बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए में "भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय IX के उद्देश्यों के लिए" "भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के उद्देश्यों के लिए" शब्दों को प्रतिस्थापित नहीं किया, यह नहीं कहा जा सकता है कि विधायिका का इरादा धारा 46ए को अप्रयोज्य बनाने का था पी. सी. अधिनियम, 1988 के उद्देश्य को लागू करने के लिए जिसके द्वारा आई. पी. सी. की धारा 161 से 165ए हटा दिया गया, और अपराधों को पी. सी. अधिनियम 1988 की धारा 7 से 13 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया।

26. एक कानून जिसे अधिकार से परे नहीं दिखाया गया है, उसे उचित अर्थ दिया जाना चाहिए। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46-ए को अर्थहीन नहीं छोड़ा जा सकता है और इसके लिए सामंजस्यपूर्ण सरंचना की आवश्यकता है। इस प्रकार, विशेष न्यायाधीश (सी.बी.आई.) ने पी.सी. अधिनियम की धारा 13(2) के साथ धारा 13(1) (डी) के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान न लेकर गलती की । हालांकि, धारा 21 आईपीसी के अर्थ में आरोपी को लोक सेवक नहीं कहा जा सकता

है, आई.पी.सी. की धारा 409 के तहत ऐसा अपराध आकर्षित नहीं हो सकता है, यह अन्य अपराधों का संज्ञान लेने के लिए निचली अदालत के लिए खुला छोड़ दिया गया है वह भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अन्य अपराधों का संज्ञान ले, यदि वे आकर्षित होते हैं।

27. इसलिए, हमारे समक्ष की गई प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद, और अभिलेख पर दस्तावेजों को देखने के बाद, और आगे से संबंधित विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के विवरण को ध्यान में रखते हुए बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए सहपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 में हमारी राय है कि निचली अदालतों ने यह अभिनिर्धारित करने में कानूनी गलती की है कि आरोपी रमेश गेली और श्रीधर सुबासरी, जो क्रमशः जीटीबी के अध्यक्ष/प्रबंध निदेशक और कार्यकारी निदेशक थे, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के उद्देश्यों के लिए लोक सेवक नहीं थे। इस प्रकार, विवादित आदेशों को अलग रखा जा सकता है। तदनुसार, मुंबई और दिल्ली में निचली अदालतों के समक्ष मामलों के अंतिम गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, आपराधिक अपील सं. 1077-1081 /2013 सी. बी. आई. द्वारा दायर को अनुमति है, और लिखित याचिका (सीआरएल.)सं. 167/2015 को खारिज़ कर दिया गया है।

रंजन गोगोई, न्यायाधिपति के अनुसार।

1. मुझे अपने विद्वान भाई प्रफुल्ल सी. पंत, न्यायाधिपत के निर्णय को देखने का सौभाग्य मिला है। हालांकि मैं अपने विद्वान भाई द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से पूरी तरह सहमत हूं, लेकिन मैं इसके लिए अपने स्वयं के कारण बताना चाहूंगा।

2. उत्पन्न होने वाले प्रश्न का उत्तर सबसे पहले "लोक सेवक" की परिभाषा के चार कोनों के भीतर दिया जाना चाहिए जैसा कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 2 (सी) में निहित है (इसके बाद पी. सी. अधिनियम '), विशेष रूप से, जो धारा 2 (सी) (viii) में निहित हैं, जिसे नीचे प्रस्तुत गया है।

2. " परिभाषाएँ - इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ अन्यथा आवश्यक न हो-

(सी) “लोक सेवक” का अर्थ

xxxx xxxxx

xxxxx

xxxxx

xxxxx

xxxxx

xxxx

xxxxx

कोई भी व्यक्ति जो ऐसा पद धारण करता है जिसके आधार पर वह किसी भी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए अधिकृत या अपेक्षित है; "

Xxxx

Xxxx

Xxxx

xxxxx"

3. पी. सी. अधिनियम के उपरोक्त प्रावधान के वास्तविक उद्देश्य और प्रभाव को समझते समय, उसमें दिखाई देने वाली अभिव्यक्ति "कार्यालय" के साथ-साथ "लोक कर्तव्य" का अर्थ भी समझना होगा जिसे धारा 2 (बी) द्वारा परिभाषित किया गया है।

4. पी. सी. अधिनियम की धारा 2 (बी) का संदर्भ जो "लोक कर्तव्य" को परिभाषित करता है, इस स्तर पर दिया जाना उचित हो सकता है।

> "2.(बी) "लोक कर्तव्य" से ऐसा कर्तव्य अभिप्रेत है जिसके निर्वहन में राज्य, जनता या बड़े पैमाने पर समुदाय का हित है।"

स्पष्टीकरण- इस खंड में "राज्य" में एक केंद्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके तहत स्थापित निगम, या एक प्राधिकरण या

एक निकाय शामिल है जिसका स्वामित्व या नियंत्रण या सहायता राज्य सरकार द्वारा की जाती है या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1);धारा 617 में परिभाषित सरकारी कंपनी";

5. पी. सी. अधिनियम की धारा 2 (बी) में लोक कर्तव्य की परिभाषा वास्तव में व्यापक है। कर्तव्यों का निर्वहन जिसमें राज्य, जनता या बड़े पैमाने पर समुदाय का हित है, को अभिव्यक्ति 'लोक कर्तव्य' के दायरे में लाया गया है । लोक कर्तव्य का निष्पादन उस व्यक्ति द्वारा जो एक ऐसा पद धारण कर रहा है जिसके लिए उसे कार्य करने की आवश्यकता है या उसे अधिकृत किया गया है ऐसा कर्तव्य पी. सी. अधिनियम की धारा 2 (सी) (viii) में निहित लोक सेवक की परिभाषा की अनिवार्य शर्त है। पी. सी. अधिनियम के सुसंगत भाग में दिखाई देने वाले 'कार्यालय' और 'लोक कर्तव्य' वाक्यांश को इसलिए गहरी समझ की आवश्यकता है।

6. पी. वी. नरसिम्हा राव बनाम राज्य (सी. बी. आई./एस. पी. ई.) (1998) 4 एससीसी 626 में इसका अर्थ है पी. सी. अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान में दिखाई देने वाली अभिव्यक्ति 'कार्यालय' को "एक ऐसी स्थिति या स्थान के रूप में समझा गया है जिसमें कुछ कर्तव्य विशेष रूप से कम या ज्यादा लोक चरित्र में से एक से जुड़े होते हैं।" मैकमिलन बनाम गेस्ट्स (1942) ए सी 561 में लॉर्ड एटकिन द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के का अनुसरण करते हुए इस न्यायालय ने 'कार्यालय' अभिव्यक्ति

के अर्थ को एक ऐसे पद के लिए संदर्भित करने के लिए मंजूरी दी थी जिसका अस्तित्व उस व्यक्ति से स्वतंत्र है जो उसी पद को भरता है और जिसे क्रमिक रूप से उत्तरोत्तर धारकों से भरने की आवश्यकता होती है।

7. जबकि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधिनियमन के लिए बताए गए उद्देश्यों और कारणों में यह स्पष्ट किया गया है कि अधिनियम, अन्य बातों के साथ-साथ, लोक सेवक की परिभाषा के दायरे को व्यापक बनाने की परिकल्पना करता है, फिर भी, किसी भी पद के धारक द्वारा केवल लोक कर्तव्यों का पालन पी. सी. अधिनियम की धारा 2 (सी) में निहित 'लोक सेवक' अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर पदधारी को नहीं लाता। धारा 2 (बी) में निहित 'लोक कर्तव्य' की व्यापक परिभाषा किसी भी कार्यालय से जुड़े किसी भी कर्तव्य को शामिल करने में सक्षम होगी क्योंकि समकालीन परिदृश्य में शायद ही कोई ऐसा कार्यालय हो जिसके कर्तव्यों का अंतिम उपाय में, लोक हित या बड़े पैमाने पर समुदाय के हित पर असर न पड़ता हो। लोक सेवक की परिभाषा की इस तरह की व्यापक समझ का प्रभाव निजी कार्यालय या लोक कार्यालय के धारक के बीच सभी अंतरों को मिटाने का हो सकता है जो बनाए रखा जाना चाहिए। इसलिए, मेरे अनुसार, लोक सेवक अभिव्यक्ति को समझना उचित होगा संदर्भ द्वारा कार्यालय और कर्तव्य के निर्वहन के संबंध में इसके अतिरिक्त लोक प्रकृति की होनी चाहिए ।

8. मामले के अगले हिस्से पर आते हुए, अर्थात्, बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए के प्रावधानों की प्रयोज्यता (इसके बाद 'बी. आर. अधिनियम' के रूप में संदर्भित) जो पाया जाता है वह यह है कि पूर्णकालिक आधार पर नियुक्त अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक, निदेशक, लेखा परीक्षक, परिसमापक, प्रबंधक और बैंकिंग कंपनी के किसी भी अन्य कर्मचारी को भारतीय दंड संहिता के अध्याय IX के प्रयोजनों के लिए लोक सेवक माना जाता है। धारा 46ए को 1994 के अधिनियम 20 द्वारा संशोधित किया गया था ताकि बैंकिंग कंपनी के अधिकारियों की एक बड़ी श्रेणी को इसके दायरे में लाया जा सके। इससे पहले केवल अध्यक्ष, निदेशक और लेखा परीक्षक ही उपरोक्त धारा 46ए के दायरे में आते थे।

9. भारतीय दंड संहिता के अध्याय IX में निहित धारा 161 से 165ए को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 31 द्वारा निरस्त कर दिया गया है और उक्त अपराधों को धारा 7, 8, 9, 10, 11 और 12 में शामिल किया गया है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 धारा 166 (जैसा कि मूल रूप से अधिनियमित था), धारा 167 (संशोधन के साथ), धारा 168, 169, 170 और 171 (जैसा कि मूल रूप से अधिनियमित था) भारतीय दंड संहिता के अध्याय IX में बने रहेंगे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधिनियमन के बाद भी ।

10. बीआर अधिनियम की धारा 46ए के आधार पर पदाधिकारी/ एक बैंकिंग कंपनी के कर्मचारी (निजी बैंकिंग कंपनी सहित) आईपीसी के अध्याय IX के प्रयोजनों के लिए "लोक सेवक" थे। पीसी अधिनियम के अधिनियमन के साथ संहिता के अध्याय IX में शामिल धारा 161 से 165ए के तहत अपराधों को उक्त अध्याय IX से हटा दिया गया और पीसी अधिनियम की धारा 7 से 12 के तहत शामिल किया गया। आई. पी. सी. के अध्याय IX से उक्त प्रावधानों को हटाने और शामिल करने के साथ पी. सी. अधिनियम में उसी के संबंध में बी. आर. अधिनियम की धारा 46ए में एक विशेष प्रविष्टि से उसमें प्रावधान को ज़ारीरखा जाना था किसी बैंकिंग कंपनी के अधिकारियों के संबंध में जहां पी. सी. अधिनियम की धारा 7 से 12 तक के अपराधों का संबंध है । हालाँकि, वैसा नहीं किया गया। न्यायालय को इसके कारणों का अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है, हालांकि, शायद एक संभावित कारण पीसी अधिनियम की धारा 2 (सी) द्वारा बनाई गई "लोक सेवक" की परिभाषा का व्यापक विस्तार हो सकता है। जो भी हो, ऐसी स्थिति में जहां पीसी अधिनियम के अधिनियमन के पीछे विधायी मंशा, अन्य बातों के साथ-साथ, "लोक सेवक" की परिभाषा का विस्तार करना था, पीसी अधिनियम की धारा 46 ए में पीसी अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों को शामिल करने की चूक हुई। 1.पी.सी. की धारा 161 से 165ए को हटाने के बाद बीआर अधिनियम। अध्याय IX से इसे पूरी तरह से अनपेक्षित विधायी चूक माना जा सकता है जिसे

न्यायालय व्याख्या की प्रक्रिया द्वारा भर सकता है। यद्यपि कैसस ऑमिसस का नियम अर्थात "जो क़ानून में प्रदान नहीं किया गया है उसे न्यायालयों द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता है" व्याख्या का एक सख्त नियम है, लेकिन इसके कुछ प्रसिद्ध अपवाद हैं। सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स लिमिटेड बनाम आशेर (1949) 2 एआईआईईआर 155 पृष्ठ 164 में लॉर्ड डेनिंग की निम्नलिखित राय पर इस न्यायालय ने ध्यान दिया और मंजूरी दे दी जिसे देखा जा सकता है।

> "अंग्रेजी भाषा गणितीय परिशुद्धता का साधन नहीं है। यदि ऐसा होता तो हमारा साहित्य बहुत अधिक गरीब होता... उसे (न्यायाधीश को) संसद के इरादे को जानने के रचनात्मक कार्य में लग जाना चाहिए, और उसे अवश्य ही ऐसा न केवल कानून की भाषा से करें, बल्कि उन सामाजिक परिस्थितियों पर भी विचार करते हुए करें, जिन्होंने इसे जन्म दिया, और उस बुराई को भी ध्यान में रखते हुए, जिसके समाधान के लिए इसे पारित किया गया था, और फिर उसे लिखित शब्द को पूरक करना होगा विधायिका की मंशा को के लिए “बल और जीवन" देने के लिए.... न्यायाधीश को खुद से यह सवाल पूछना चाहिए कि, यदि अधिनियम के निर्माताओं को स्वयं इसकी बनावट में यह गड़बड़ी मिली होती, तो वे इसे कैसे ठीक करते? फिर

उसे वैसा ही करना चाहिए जैसा उन्होंने किया होगा। एक न्यायाधीश को उस तत्त्व को नहीं बदलना चाहिए जिससे अधिनियम बुना गया है, लेकिन वह सिलवटों को दूर कर सकता है और करना भी चाहिए।"

मैगोर और सेंट मेलन्स ग्रामीण जिला परिषद बनाम न्यूपोर्ट निगम (1950) 2 एआईआईईआर 1226 में विद्वान न्यायाधीश ने उपरोक्त सिद्धांतों को निम्नलिखित प्रभाव से अलग रूप में दोहरायाः

"हम यहां संसद और मंत्रियों की मंशा का पता लगाने और उसे पूरा करने के लिए बैठते हैं, और हम इसे विनाशकारी विश्लेषण तक खोलने की तुलना में कमियों को भरकर और अधिनियमन का अर्थ समझकर बेहतर करते हैं।"

11. हालाँकि लॉर्ड डेनिंग की उपरोक्त टिप्पणियों की उनके ही दरबार में तीखी आलोचना हुई थी, लेकिन हमें बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम ए राजप्पा और अन्य (1950) 2 एआईआईईआर 1226 में अभिव्यक्ति "उद्योग" को परिभाषित करने की न्यायिक खोज में उसी का संदर्भ और अंतर्निहित अनुमोदन मिलता है । मुख्य न्यायाधीश एम.एच.बेग की राय के अनुच्छेद 147 और 148 बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड में जो नीचे उद्धृत किया गया है, स्पष्ट रूप से पहले संदर्भित इस न्यायालय की स्वीकृति का संकेत देगा।

"147. मेरे विद्वान भाई ने सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स लिमिटेड बनाम आशेर ((1949 2 ऑल ईआर 155, 164]) मामले में रचना की उस पद्धति पर भरोसा किया है जिसे इंग्लैंड में कुछ हद तक अपरंपरागत माना जाता था। जहां लॉर्ड डेनिंग, एलजे ने कहा था:

जब कोई दोष प्रकट होता है तो न्यायाधीश केवल हाथ जोड़कर ड्राफ्ट्समैन को दोषी नहीं ठहरा सकता। उन्हें संसद की मंशा जानने के रचनात्मक कार्य पर काम करना चाहिए- और फिर उन्हें लिखित शब्दों को पूरक करना चाहिए ताकि विधायिका की मंशा को बल और जीवन मिल सके। एक न्यायाधीश को स्वयं से यह प्रश्न पूछना चाहिए कि यदि अधिनियम के निर्माताओं को स्वयं इसकी संरचना में इस गड़बड़ी का पता चला होता, तो उन्होंने इसे कैसे सीधा किया होता? फिर उसे वैसा ही करना होगा जैसा उन्होंने किया होता। एक न्यायाधीश को उस तत्त्व को नहीं बदलना चाहिए जिससे अधिनियम बुना गया है, लेकिन वह सिलवटों को दूर कर सकता है और करना भी चाहिए।

जब यह मामला हाउस ऑफ लॉर्ड्स में गया तो ऐसा प्रतीत हुआ कि लॉ लॉर्ड्स ने अस्पष्ट कानून को और अधिक

समझने योग्य बनाने के लॉर्ड डेनिंग के साहसिक प्रयास को अस्वीकार कर दिया। लॉर्ड सिमंड्स ने इसे "व्याख्या के छद्म भेष के तहत विधायी कार्य का नग्न अतिक्रमण" पाया। लॉर्ड मोर्टन (जिनके साथ लॉर्ड गोडार्ड पूरी तरह से सहमत थे) ने कहा: "ये वीरताएं अनुचित हैं" और लॉर्ड टकर ने कहा, "यदि डेनिंग, एल.जे. द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण प्रबल होता है तो आपका आधिपत्य न्यायिक क्षमता के बजाय विधायी रूप से कार्य करेगा।"

148. शायद, समय बीतने के साथ, वसीयत की रचना में "आर्म-चेयर नियम" जैसी एक विधि के विस्तार के रूप में वर्णित किया जा सकता है। न्यायाधीश अधिक स्पष्ट रूप से विधायिका के स्थान पर कदम रख सकते हैं जहां एक अधिनियम अपने इरादों को बहुत अधिक अस्पष्ट या अनिश्चित स्थिति में छोड़ देता है। एम. पेंटिया बनाम मुद्दला वीरमल्लप्पा [(1961) 2 एससीआर 295] में, सरकार, न्यायाधिपति. ने ऊपर दिए गए तर्क को मंजूरी दे दी, जिसे लॉर्ड डेनिंग ने अपनाया था। और, मुझे यह अवश्य कहना चाहिए कि, ऐसे मामले में जहां "उद्योग" की परिभाषा उसी स्थिति में छोड़ दी जाती है जिसमें हम इसे पाते हैं। स्थिति शायद <u>उत्पन्न कठिनाइयों से निपटने के</u>

लिए कुछ न्यायिक वीरता की मांग करती है। (अंडरलाइनिंग मेरी है)

12. इस दृष्टिकोण के लिए अन्य न्यायिक उदाहरण हैं कि मैंने उसी अंतिम निष्कर्ष को लेना और पर पहुंचना पसंद किया है जिस पर मेरे विद्वान भाई प्रफुल्ल सी. पंत, न्यायाधिपति. पहुंचे हैं। मैं विशेष रूप से उनमें से केवल एक अर्थात्, दादी जगन्नाधम बनाम जम्मूलु रामुलु और अन्य (2001) 7 एससीसी 71 में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का उल्लेख करना चाहूंगा ।

आदेश XXI नियम 89, सीपीसी के नियम 92(2) के साथ पठित, बिक्री को रद्द करने के लिए एक आवेदन दाखिल करने के लिए प्रदान किया गया है। ऐसा आवेदन बिक्री की तारीख से 30 दिनों के भीतर निर्दिष्ट राशि जमा करने के बाद किया जाना आवश्यक था। जबकि उक्त प्रावधान में कोई संशोधन नहीं हुआ, बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन दाखिल करने के लिए 30 दिनों की समय सीमा प्रदान करने वाली सीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 में संशोधन किया गया और समय 30 दिनों से बढ़ाकर 60 दिन कर दिया गया। सीमा अधिनियम में संशोधन के उद्देश्यों और कारणों को ध्यान में रखते हुए, अर्थात्, अवधि को 30 से बढ़ाकर 60 दिन करने की आवश्यकता है क्योंकि 30 दिनों की अवधि को बहुत छोटा माना जाता है, दादी जगन्नाधम (उपरोक्त) में इस न्यायालय

की एक संविधान पीठ ने आदेश XXI नियम 89 को समझकर स्थिति में सामंजस्य स्थापित किया, जिसके तहत अदालत पर बिक्री को रद्द करने का दायित्व डाला गया, यदि जमा राशि के साथ रद्द करने के लिए आवेदन 30 दिनों के भीतर किया जाता है। हालाँकि, यदि जमा राशि के साथ ऐसा आवेदन 30 दिनों के बाद लेकिन सीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 द्वारा अपेक्षित 60 दिनों की अवधि से पहले किया जाता है,(जैसा संशोधित) न्यायालय के पास अभी भी इसे रद्द करने का विवेकाधिकार होगा। सीपीसी में 30 दिनों की अवधि आदेश 21 नियम 89/92(2) को बाद में (द्वारा 2000 का अधिनियम 22) में 60 दिनों के लिए संशोधित किया गया था।

13. मौजूदा मामले को ध्यान में रखते हुए, इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता है कि पीसी अधिनियम के अधिनियमित होने से पहले, बीआर अधिनियम की धारा 46ए में अध्याय IX के प्रयोजनों के लिए एक बैंकिंग कंपनी के संबंधित कार्यान्वयन मुक्त धारकों को लोक सेवक के रूप में मानने का प्रभाव था आईपीसी में प्रावधान को सहउद्देश्यीय मानने के आधार पर। 'लोक सेवक' की परिभाषा को व्यापक बनाने के स्पष्ट इरादे से पीसी अधिनियम के अधिनियमन को बीआर अधिनियम की धारा 46 ए में स्पष्ट चूक को सुधारने या भरने के लिए न्यायिक असहायता व्यक्त करके विपरीत प्रभाव डालने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। बीआर अधिनियम की धारा 46ए में डीमिंग प्रावधानों को पीसी अधिनियम की धारा 7 से 12

के तहत अपराधों तक विस्तारित करना ज़ारीरखने की चूक को स्पष्ट रूप से अनपेक्षित समझा जाना चाहिए और इसलिए इसे भरने के लिए न्यायिक क्रिया को स्वीकार करने में सक्षम होना चाहिए। पीसी अधिनियम को लागू करके "लोक सेवक" की परिभाषा को व्यापक बनाने के स्पष्ट विधायी इरादे को बीआर अधिनियम की धारा 46 ए में चूक को अदालत द्वारा भरने में असमर्थ होने की व्याख्या और समझ को पराजित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

14. मामले के उपरोक्त दृष्टिकोण में, मैं भी उसी निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ जिस पर मेरे विद्वान भाई प्रफुल्ल सी. पंत, जे. पहुँचे हैं, अर्थात, आरोपी प्रतिवादी पीसी अधिनियम के प्रयोजन के लिए लोक सेवक हैं। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 46ए के प्रावधान और आरोपी उत्तरदाताओं के खिलाफ शुरू किए गए अभियोजन कानून में बनाए रखने योग्य हैं। परिणामस्वरूप, सी.बी.आई. द्वारा दायर आपराधिक अपीलें अनुमति दी जाती है और रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 167/2015 खारिज की जाती है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता चित्रा भदौरिया द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।